''तत्कथाक्षिप्तचित्तः'' नामको विचार

– असित शाह.

सर्वोत्तमस्तोत्रमेंके १०८ नामनकी सूचिमें या नामकू मैंने श्रीपरक तथा फलपरक है ऐसे जमायो है. यामें श्रीपरक कैसे है याको विचार मझेदार है तो फलपरक कैसे है वामें कुछ गम्भीर महत्त्वपूर्ण बातें हैं.

वैसे सूचि बनाते समय मैंने अतद्व्यावर्तन करके याकू जमायो हतो. मैंने सोच्यो थो कि यामें ऐश्वर्य-वीर्य-यश तो भगवत्कथाको है कि जामें श्रीमहाप्रभुजी जैसे धुरंधरको चित्त तल्लीन हो गयो. ज्ञान-वैराग्य तो होश होय तब प्रकट हो सके. धर्मिपरक नाम तब होवे जब सदा एकसार होवे, पर यहाँ तो पहले बाहोश हते और पीछे आक्षिप्तचित्त हो गये वैसो निरूपण है. सो बच्यो श्रीगुण, करके मैंने वा विभागमें या नामकू धर दियो. वैसे ही प्रमाण-साधन होशके और प्रमेय सदा एकसार होवे वैसे विभाग लगे, करके मैंने या नामकू फलपरक विभागमें जमायो. वा बखत सूचि पूरी करवेकी धांधल थी, सो मैंने सोची कि पीछे फुरसतमें तद्विवरणको विचार करेंगे.

अब जब या नामके व्याख्यानको अवसर पास आने लग्यो तो मनमें सहसा विचार शुरु हो गयो और चलतो ही गयो. सबसू ज्यादा विचार या नामपे मैंने कियो है, जाकू मैं अब बता रह्यो हूँ.

पहले श्रीगुण क्या होवे है याको विचार करें.

(१) श्रीको, शोभाको निर्णय बहोत लचीलो है. कौनकी शोभा कायमें है यामें कोई शास्त्र प्रमाण नहीं होवे है पर लोकाचार – सोशियल नॉर्म्स् – निर्धारक होवे हैं. और जाकी जामें शोभा होवे है वाहीकी वामें शोभा होवे है, औरनकी नहीं. जैसे घुटुरुन चलनो, वामें भी फिसल जानो, मुखमेंसू लार टपकनी, जो खायो-पीयो वासू मुख लपेट्यो होनो —ये सब छोटे बच्चाकी शोभा है. जैसे श्रीगुसाँईजी कहे हैं ''तोकता वपुषि राजते''. पर कोई बारह-पन्द्रह सालको लडका या युवान या बडो बूढो पुरुष ऐसे करे तो? लोग हसेंगे. वाकू वह शोभा नहीं देवे है. कोई पहलवानको अपन वर्णन ऐसे करें कि भोजनसू भर्यो बडो थाल सामने रखके वह खा रह्यो है तो

शोभा लगे. पर कोई योगीको वर्णन करनो होय तो जंगलमें एकांतमें गुफामें या आश्रममें प्राणायाम करके केवल हवा खा रह्यो है ऐसो बतानो पडेगो. वाकू भोजनालयमें या स्विमिंगपूलके पास बैठ्यो बतावें तो शोभा नहीं लगे.

यों कौनकी शोभा कायमें है ये वाके स्वभावके आधारपे तय कियो जाय है. वामें कुछ बुराई भी लगती होय तो उदात्तदृष्टि रखके वाकू नजरअंदाज करी जाय है. जैसे एक्शन मूवी चाहे होलीवूडकी होय या बोलीवूडकी, वाके हीरोकू ऐसो बतायो जाय कि एक घाव आँखके पास होय, एक बाहुपर, एक सीनेपर, एक पैरमें, और उनमेंसू खून टपक या झलक रह्यो होय तब तो वो हीरो लगे. पर कोई घाव नहीं होवे और सूट-बूट पहनके चलतो दिखावे तो लोगनकू पसंद नहीं आवेगो. पुराने जमानेमें राजा या सैनिक अपने मुखपे युद्धमें लगे घाव ढँकते नहीं थे पर शानसू प्रकट करते थे. आजकल अपने देशमें शहीद सैनिकको देह तिरंगामें लपेटके आवे तब लाख-लाख लोग कामकाज छोडकर वाकी अंतिमयात्रामें सामिल होवे हैं! वापे फूल बरसावे हैं. दुश्मन भले ही वाके हाथ / पैर / आँख / माथा भी प्राणके साथ हर ले, पर बस तिरंगामें लपेटके आयो वाकी शोभा इतनी मानी जाय है! वा शोभाकू दुश्मन नहीं हर सके है.

(२) श्रीके तीन स्तर होवे हैं : सर्वोत्तम, मध्यम और जघन्य. जहाँ स्वभाव प्रकट होवे वो तो सर्वोत्तम श्री होवे हैं. जहाँ सामर्थ्य प्रकट होवे हैं वो मध्यम श्री होवे हैं. पर जहाँ केवल प्राकृतानुकृति उभरे वो जघन्य श्री होवे हैं. जैसे आजकल टी.वी.पे बच्चानकी टॅलन्ट कोन्टॅस्ट होवे हैं. वामें बच्चा बडेनकी तरह गाके या नाचके दिखावे तो वामें अपने सामर्थ्यसू जितनो अच्छो अनुकरण वह करे उतनी वाकू वाहवाह मिले है. पर वाके बजाय वह बच्चा जैसो ही नाचे-गावे तो वामें वाको स्वभाव प्रकट होवे है. वामें कोई बालसहज गलती भी कर दे तो वो अनदेखी करके लोग वाकू ज्यादा पसंद करते होवे हैं. और दोनोंको होचपोच कर दे तो वो जघन्य चेष्टा पसंद नहीं आवे है.

ये सब बात मैं लोकाचारके अनुसार ही बता रह्यो हूँ ; कोई शास्त्रकी बात नहीं है. यामें कछु अस्पष्ट रह गयो होवे तो आगे स्फुट हो जायगो.

अब अपने विषयपे आवें, तो कोई महान प्रेमीको वर्णन कैसो होनो चहिये? कोई यों कहे कि वह रिसेप्शनमें वरराजाकी तरह

सज-धजके सुशोभित सुप्रकाशित स्टेजपे खडो होके सबनसू भेट बटोरके फोटो खींचवा रह्यो है —तो कैसो लगेगो? नहीं जचेगो. मजनूके वर्णनमें वाके कपडा मैले-फटे थे, दाढी बढी थी, न्हायो-धोयो नहीं थो, भूखो-प्यासो थो, जमीनपर लेट्यो थो ऐसो वर्णन भी चल सके. पर पतेकी बात है कि वह लैलामें आक्षिप्तचित्त है ऐसो वर्णन होनो चहिये. बाकी सब छोटी-मोटी बुराई नजरअंदाज करके वाकी शोभा उभरेगी. लैलाकी चाहत वाके मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, स्वास्थ्य, होश या प्राणकू भी हर सके है. पर वाकी शोभाकू नहीं, क्योंकि लोकाचार या बारेमें ऐसो लचीलो है कि इन बातनकी अनदेखी करके उदात्त दृष्टि रखी जाय है महान प्रेमीके बारेमें.

भक्तनको भी वैसो ही है. उद्धवजी संदेश लेके व्रजमें आये तब उनकू व्रजभक्तनकी ऐसी ही शोभा दिखी. प्रभुने व्रजभक्तनको मन-बुद्धि-चित्त, स्वास्थ्य आदि हर लिये थे, पर उनकी आक्षिप्तचित्त होनेकी शोभा अखण्डित थी. सो उद्धवजीकू लग्यो कि वियोगमें भक्तनकू ऐसे ही होनो चहिये.

सो अपने श्रीमहाप्रभुजीको भी ये स्वभाव है भक्त होवेको. वे जब तत्कथाक्षिप्तचित्त होय ऐसो दर्शन देवे तब उनकी सर्वोत्तम श्री प्रकट होवे है. आपश्री वेदपारग, मायावादनिराकर्ता, वाक्पति, विबुधेश्वर, तत्त्वसूत्रभाष्यप्रदर्शक आदि हैं या उपदेशक हैं ये आपको सामर्थ्य है. वाकी एक अपनी शोभा है, जो चरित्रमें और वाणीमें भी उभरे है. पर कहीं कहीं कभीकभाक भीतरसू उछलके भक्त होनेको स्वभाव बाहर प्रकट हो ही जाय है, जो वासू परे है!

जैसे तत्त्वार्थदीपनिबन्धमें शास्त्रार्थप्रकरणमें जीवकी जीवन्मुक्तिके वर्णनमें ''आनंदांशाभिव्यक्तौ तु तत्र ब्रह्माण्डकोटयः, प्रतीयेरन् परिच्छेदो व्यापकत्वं च तस्य तत्'' ऐसे श्रीआचार्यचरण कारिकामें आज्ञा करे हैं. अब परिच्छेद और व्यापकता दोनों जीवन्मुक्तकू एकसाथ प्रतीत कैसे हो सके याके समर्थनमें युक्ति देते भये आपश्री प्रकाशमें आज्ञा करे हैं ''अण्वपि ब्रह्म व्यापकं भवति. यथा कृष्णो यशोदाक्रोडे स्थितोऽपि सर्वजगदाधारो भवति!''. तो ये भक्तस्वभाव प्रकट हो गयो! जीवकी जीवन्मुक्तिकी चर्चा करते वक्त तत्कथाक्षिप्तचित्त होनेके कारण मुखमें ब्रह्माण्ड दिखायवेकी लीला सहसा उपस्थित हो जा रही है! (कोई श्रीमहाप्रभुजीके रूखे आलोचकनकू ये दोनों बहोत दूरकी बात लग सके हैं, पर कमसू कम अपन अनुयायीनकू तो या बातकी मज़ा लेते आनी चाहिये). ऐसो अन्यत्र भी दीखे है.

श्रीगुसाँईजी याही लिये आज्ञा करे हैं ''क्वचित् पाण्डित्यं चेत् न निगमगतिः सापि यदि न, क्रिया सा सापि स्यात् यदि न हरिमार्गे परिचयः, यदि स्यात् सोऽपि श्रीव्रजपतिरतिर्नेति निखिलैः, गुणैरन्यः को वा विलसति विना वल्लभवरम्!''.

जीवनचरित्र देखनेपर अपनकू पता चले है कि ये भक्तस्वभाव आपश्रीकू जन्मजात खैरातमें नहीं मिल्यो है, जैसे आज अपने यहाँ पीठाधीश बन जावे हैं. आपश्री निरोधलक्षणमें आज्ञा करे हैं— ''अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः.'' भक्ति अपने यहाँ पुरुषार्थ है, सो आपश्रीने भी पुरुषार्थ कियो है भक्त्यर्थ. श्रीठाकुरजीने भी बार बार अनेक आज्ञा करी है आपश्रीकू निरुद्ध करवेकू— गृहस्थाश्रमकी, सुबोधिनी लिखवेकी, ब्रह्मसंबंध करायवेकी, आसुरव्यामोहकी आदि. सो दोनोंनके संयुक्त प्रयाससू यह भक्तस्वभाव उभर्यो है.

या भक्तस्वभाववशात् श्रीआचार्यचरण अंतःकरणप्रबोधमें निखालसतासू अपनकू ये भी बतावे हैं कि दो भगवदाज्ञाको उल्लंघन उनसू हो गयो. अब कोई उपदेशककू तो सामान्यतया अपने शिष्यकू ''यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वया उपास्यानि, न इतराणि'' कह देनो पर्याप्त है. पर फिर भी अपनकू ये बतायो है आपश्रीने भक्त होनेके आवेशमें.

अपने समर्थोपदेशक पूर्वाचार्यनमें पुरुषार्थसू प्रकट ये भक्तस्वभाव अक्सर दीखे हैं. श्रीगोपीनाथजी, श्रीगुसाँईजी, श्रीगोकुलनाथजी, श्रीकल्याणरायजी, श्रीहरिरायजी आदिके चरित्र देखें. श्रीगोपीनाथजी साधनदीपिकामें आज्ञा करे हैं ''छलेनापि भजन् कृष्णं मुच्यते गोपिकादिवत्''! श्रीगुसाँईजीने परदेशसू सात बालकनकू जो पत्र लिखे हैं वामें न कौनसे गाँव या शहरमें पधारे ये बतायो है, न कितने लोगनकू सेवक किये और कितनी भेट आई ये लिख्यो है. पत्रनकी भाषामें काफी कम औपचारिकता है. उनकू बस एक बातमें ही मन है कि घरमें श्रीठाकुरजीकी सेवा कैसे हो रही है? विज्ञप्तिमें और स्तोत्र-आरती आदिमें भी यह भक्तस्वभाव फैल्यो दीखे है. श्रीगोकुलनाथजी ८४ वैष्णवनकी वार्तानकू भगवत्कथाको फल कहके सराहे हैं! श्रीकल्याणरायजीने कितने सुंदर पदनकी रचना की है! अन्यमार्गीय मठाधीश बननेको अवसर ठुकराकर उन्होंने श्रीनंदरायजीको ढाढी बननो ही मांग्यो और पायो है. श्रीहरिरायजीने दानलीला आदि अनेक रसप्रचुर पदनकी रचना करी है. ''हों वारी इन वल्लभीयनपर, मेरे तनको करों बिछोना शीश धरों इनके चरननतर'' कहनेको दमखम एक भक्तमें ही हो सके

हैं, कोरे उपदेशकमें नहीं. ऐसे अनेक पूर्वाचार्य हैं.

ये वैसे कोई लुप्त भई हो ऐसी डायनोसॉरकी प्रजातिकी बात नहीं है. आज भी नियमसू नहीं तो अपवादसू वल्लभकुलमें अनेक महाराज / बावा / बहुजी / बेटीजी ऐसे हैं जो सालनसू नियमसू रुचिसू सुबह शाम श्रीठाकुरजीकी सेवा आनन्दसू करे हैं. कईनके यहाँ तो खवास भी नहीं होवे हैं. प्राचीन कालमें आश्रममें रहते ऋषि भी पढानेके साथ साथ अपने धर्माचरणमें परायण रहते ही थे.

ये सचमुच उपहासको नहीं पर विषादको विषय है कि अपने सम्प्रदायके आठ पीठाधीशनमेंसू सभी तो नहीं पर प्रायः आज ऐसे हैं कि उनके श्रीठाकुरजी व्रजमें या राजस्थानमें बिराज रहे हैं और वे स्वयं गुजरात, मध्यप्रदेश या बम्बईमें. सालमें कुछ सप्ताह वे वहाँ पधारकर सेवा करके पाछे लौट आवे हैं. यामें उनको पीठाधीशको सामर्थ्य (ट्रस्ट करनेके बाद जो कछु बच्यो होय सो) तो आजीवन कायम है, पर भक्तस्वभावकी सर्वोत्तमश्री उनमें प्रकट नहीं होवे है. मैं ऐसी शुभकामना करुँ हूँ कि वे अपने श्रीठाकुरजीको सान्निध्य, सेवा और तद्द्वारा भक्तस्वभाव सदा प्राप्त करें.

खैर. एक ध्यानाकर्षक बात यह है कि सेवकनने भले ही ‘‘कर सिंगार गिरिधरनलालको जब कर वेणु गहाई, ले दरपण सन्मुख ठाडे व्है निरख निरख मुसकाई, प्रकट व्है मारगरीति दिखाई’’ आदि गाकर श्रीमहाप्रभुजीकी सेवासामयिक शोभाको वर्णन कियो होय, श्रीगुसाँईजीने वैसो नहीं कियो. श्रीगुसाँईजीकू भलीभांति पता है कि सेवा गुप्तरीतिसों करनी चहिये और सेवा करते समय श्रीठाकुरजीकी शोभापर ही ध्यान होनो चहिये. कथा किन्तु समानशीलव्यसन सेवकनके साथ करनी होवे है, गुप्ततया नहीं. सो श्रीगुसाँईजीने ‘‘तत्सेवाक्षिप्तचित्तः’’ नहीं कहके ‘‘तत्कथाक्षिप्तचित्तः’’ कह्यो है. श्रीमहाप्रभुजीकी सेवासामयिक भक्तस्वभावानुरूप सर्वोत्तम श्रीको कहीं प्रकाश नहीं कियो है.

इन पूर्वाचार्यनके चरित्रमें सामर्थ्यवाली मध्यमश्री भी दिखे हैं. जैसे श्रीगुसाँईजी संध्या करते तबकी शोभा ‘‘सायं कुंजालय...’’ ये मंगलाचरणके श्लोकमें वर्णित है. आपश्री नित्य नावपे सवार होके गोकुलसू पल्लीपार पधारते, घोडापे सवार होके गोपालपुर पधारते, या फिर मुगलवेश धारण करके अकबरके दरबारमें न्याय करने पधारते तबकी भी शोभा तो अवश्य दर्शनीय होगी. पर वह बाहोशीकी, सामर्थ्यकी मध्यम श्री है. वासू भगवत्तन्मयताकी बेहोशीकी भक्तस्वभाव प्रकट करनेवाली श्री उत्तम है. कमसू कम अपन भक्तिमार्गीनकू तो

यह अन्तर करनो पडेगो.

याके अलावा आजकल जघन्य श्री भी हठात् प्रकट अपन कर रहे हैं. जैसे पिछले २५ सालनसू कुम्भमेलामें अपने सम्प्रदायकी ओरसू चंदा इकट्ठो करके १-२ लाख स्कवेर फीटको वल्लभाचार्य नगर बनायो जाय है. वाके उपर ५६ फ़ीटकी उँचाईपे धजा फहराई जाय है. महिनाभरके लिये जनताकू लुभानेवाले कार्यक्रमनको आयोजन कियो जाय है ; ‘‘क्योंकि सब सम्प्रदायवाले करते हैं’’! वामें और लोग तो ज्यादा आवे नहीं सो बस भर-भरके पुष्टिमार्गीय जनताकू ही अनेक शहेरनसू बुलाई जाय है. खोटे खोटे कुम्भमेलामें पधारके चमत्कार करनेके वार्ताप्रसंग भी श्रीमहाप्रभुजीके चरित्रमें घुसा दिये जाय हैं. चार शाहीस्नान होवे वामें सबसू आगे अखाडानके नागाबावा होवे और पीछे कहीं श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूपकू शोभायात्रा निकालके नदीमें स्नान करवे अपन ले जावे हैं! यामें अपन वाल्लभ शिष्य होनेके बजाय गाँवके और नागाबावाके अनुयायी ज्यादा दीखते होवे हैं. और सम्प्रदायवाले करे सो करनो यह प्राकृतानुकृतिको दुष्प्रभाव श्रीमहाप्रभुजी तक पहुँचे हैं. ऐसी शोभायात्रानमें श्री प्रकट होती भी होयगी तो वह जघन्य श्री है. हकीकतमें अपने आद्याचार्यनकू तो ऐसे कुम्भमेलानसू दूर प्रयागके सामने पार अडेलमें ही निवास करनो सुहावे है.

अब या नामकी फलपरकताको विचार करें. याके लिये पहले तत्त्वार्थदीपनिबन्धके सर्वनिर्णयप्रकरणके अन्तर्गत भक्तिप्रकरणकी तीन कारिका और वापे स्वयं श्रीमहाप्रभुजीने प्रकाश लिख्यो है वाकू संक्षेपमें समझनो पडेगो. यहाँ मैंने वाको मूल गद्य-पद्यांश दियो है.

तत्र आदितः साधनानि आह.

कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादिरहितं नरम् ॥
श्रीभागवततत्त्वज्ञं भजेद् जिज्ञासुरादरात् ॥

कृष्णसेवापरम् इति. यो हि गुरुः सेवाम् उपदेक्ष्यति स स्वयं चेत् ताम् उत्तमां जानीयात् तदा कथं न स्वयं कुर्याद् इति सेवापरएव गुरुः. तत्रापि निमित्तानि वारयति दम्भादिरहितम् इति. सेवा च प्रमाणमूलैव पुरुषार्थपर्यवसायिनी. अन्यथा मनसि अन्यद् विधाय अन्यथा करणे न फलसिद्धिः इति अभिप्रायेण आह श्रीभागवततत्त्वज्ञम् इति. जिज्ञासुः नतु कौतुकाद्याविष्टः. भजनं सर्वभावेन. तदा तदुक्तप्रकारेण भगवत्सेवा कर्तव्या.

सच दुर्लभः इति तेनापि वक्तव्यं प्रकारम् आह.

तदभावे स्वयं वापि मूर्तिं कृत्वा हरेः क्वचित् ॥
परिचर्यां सदा कुर्यात् तद्रूपं तत्र च स्थितम् ॥

तदभावे इति. क्वचिद् देशविशेषे सत्परिपन्थिनाम् अभावयुक्ते हरेः मूर्तिं कृत्वा भजेत्. अयमेव अस्य मार्गस्य प्रकारः उत्तमः यन्मूर्तौ कृतं सर्वं भगवति कृतं भवति. तत्र मूर्तेः भगवत्त्वं त्रेधा निरूपयति तद्रूपम् इति. वस्तुविचारेण सर्वस्य भगवद्रूपत्वाद् विशेषस्तु अयम् ''एनम् उद्धरिष्यामि'' इति तदा मृदादेः प्रादुर्भूतो भक्तिमार्गानुसारेण आह तत्र च स्थितम् इति, मूर्तौ स्थितम्. परं यत्र हस्तः तत्र हस्तः, तत्तदवयवेषु तत्तदवयवाः इति.

तत्र हेतुः

साकारव्यापकत्वाच्च मन्त्रस्यापि विधानतः ॥
श्रीकृष्णं पूजयेद् भक्त्या यथालब्धोपचारकैः ॥

व्यापकं साकारं ब्रह्म इति. अतः सर्वे कटकाद्युपचाराः भगवदवयवेषु एव साक्षात्कृताः भवन्ति. उपासनामार्गानुसारेणापि मूर्ताविव भगवद्भजनं भवति इति आह मन्त्रस्यापि विधानतः इति. न्यासादिपूर्वकं सर्वपूजा. मूर्तौ विशेषम् आह श्रीकृष्णम् इति. मूर्त्यन्तरे द्व्यन्तरितत्वम्. यथावद् मुख्यतया प्राप्तैः द्रव्यैः उपचाराः कर्तव्याः.

यहाँ श्रीमहाप्रभुजीने अपने अनुयायीनकू उपदेश दियो है, यासू पहले गुरु-शिष्यके और फिर सेव्य श्रीठाकुरजीके लक्षण बताये हैं. मोकू परन्तु कुछ दूसरी दृष्टिसू बात समझानी है, या लिये मैं पहले सेव्य, फिर सेवक और अन्तमें गुरुपे आउंगो.

उपनिषद्में ''ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि ... रूपाणि ... कर्माणि बिभर्ति, अयमात्मा एकः सन् एतत् त्रयम्'' कह्यो है. ब्रह्म जब पृथुबुध्नोदररूप और 'घट' नाम धारण करके जलानयनादि क्रिया करनो चाहे है तब घटतया प्रकट होवे है. साथ ही ''स आत्मानं द्वेधा पातयत्, पतिश्च पत्नी च अभवताम्'' कहकर ये बतायो है कि वह सृष्टि अच्छी तरहसू चल सके याके अनुरूप विविध भाव भी धारण करे है. सो या चौखटमें श्रीआचार्यचरण क्या आज्ञा कर रहे हैं ये अब समझें.

कौन	क) सेव्य	ख) सेवक	ग) गुरु
१. रूप	साकारव्यापक	भक्तिमार्गीय	नर
२. नाम	मन्त्र	भक्तिमार्गीय	भक्तिमार्गीय
३. क्रिया	परिवारोद्धार	१) सदा परिचर्या	१) सदा परिचर्या
		२) सेवन = संग	२) प्रामाणिक प्रभुसेवोपदेश
		(प्रारम्भे / यथावसर)	(प्रारम्भे / यथावसर)
४. भाव	परिवारोद्धारक	१) परिचारक	१) परिचारक
		२) जिज्ञासा, आदर	२) कर्तव्यनिर्वाह
		३) कौतुकाद्यावेशाभाव	३) दम्भादिराहित्य

क) पहले सेव्य. श्रीआचार्यचरण आज्ञा करे हैं कि सेव्यस्वरूप श्रीठाकुरजी तीन तरहसू पुरुषोत्तम हैं, ''मूर्तेः भगवत्त्वं त्रेधा निरूपयति''.

(१) रूपको विचार करें तो वे साकारव्यापक हैं. अक्षरब्रह्म जबकि लीलाके नियमानुसार दो अलग-अलग रूप लेके एक रूपसू साकार और एक रूपसू व्यापक होवे है. जैसे उपनिषद् कहे हैं ''द्वे वाव ब्रह्मणो रूपं मूर्तं चैव अमूर्तं च ...''. परब्रह्म एक ही रूप ऐसो धारण करे है जो साकार भी होय और साथ ही व्यापक भी. बलिराजाकू और अर्जुनकू ऐसे विराटरूपको दर्शन दियो. पद्मनाभदासकी वार्तामें भी ऐसो प्रसंग है कि उनके श्रीठाकुरजीने पहले विशाल रूप धारण करके दर्शन दिये. सो रूपके विचारसू साकारव्यापक होनेके कारण सेव्यस्वरूप साक्षात् पुरुषोत्तम हैं.

(२) नामको विचार करें तो उपासनामार्गमें भी सेव्यस्वरूपके सन्मुख जो मन्त्र बोले जाय हैं वामें उन्हें भगवान करके ही संबोधित किये जाय हैं. ये वैसे उपलक्षण है ; उपासनामार्गके अलावा अपने सम्प्रदायमें भी जैसे ब्रह्मसंबंधके गद्यमन्त्रमें अपन श्रीठाकुरजीकू भगवान, कृष्ण, गोपीजनवल्लभ आदि नामसू सम्बोधित करे हैं. भावप्रतिष्ठासू पुष्ट करानेकी विधिमें भी श्रीभागवतके जो श्लोक बोले जाय हैं और बादमें सेवा करते समय पुरुषसूक्त या कीर्तन गावे वामें पुरुष या गोविन्द आदि नामसू ही श्रीठाकुरजीकू अपन संबोधित करे हैं. सो भगवन्नामनसू संबोधित किये जानेके कारण सेव्यस्वरूप साक्षात् पुरुषोत्तम हैं.

(३) क्रियाके विचारमें श्रीआचार्यचरण कारिकामें तो नहीं पर प्रकाशमें आज्ञा करे हैं कि जब ''या सेवकको मैं उद्धार करुंगो'' ऐसी क्रिया करनेकी इच्छा होवे तब प्रभु सेव्यत्व धारण करे हैं. यामें 'एनम्' बडो मीठो एकवचन है! यहाँ अवतारीकी तरह जगतभरके उद्धारकी कोई बात नहीं है. जा एक सेवकको उद्धार करनो है केवल वाकी

ही सेवा लेनी है. पर फिर भी, क्योंकि प्रायः सेवक गृहस्थ होवे हैं और जैसे जगन्नाथ जोशीके वंशज आज भी सेवा कर रहे हैं, यासू मैंने परिवारको उद्धार यहाँ लियो है.

एक बात यहाँ समझ लेनी आवश्यक है कि उद्धारको अपने यहाँ मतलब न गोलोक प्राप्त करनो है न वहाँ जानेके लिये प्लेनकी टिकट मिलनो है, न पासपोर्ट मिलनो है न ही वीसा मिलनो है. चौरासी वैष्णवनकी वार्ता पढें तो करीब पचास वार्ता ऐसी मिलेगी कि जामें उद्धारको साफसाफ मतलब है ''सो शुद्धभाव देखिके श्रीठाकुरजी सानुभावता जनावन लागे.'' सो उद्धार माने अपने माथे बिराजते श्रीठाकुरजी सेवककू सानुभावता जनावे वह.

सो या प्रकारके उद्धारके कर्ता सेव्य श्रीठाकुरजी साक्षात् पुरुषोत्तम हैं. चौथो भाव मैं यामें जोड दूँ तो परिवारके उद्धारक होनेको भाव सेव्यस्वरूप श्रीठाकुरजीने धारण कर रख्यो है.

अब बारी ख) सेवककी.

(१-२) सेवक अपने यहाँ कोई भी वर्ण या आश्रमको हो सके है. स्त्री या पुरुष, मनुष्य या अपवादतया पशु-पक्षी भी हो सके हैं. सो वाके नाम-रूपके बारेमें श्रीआचार्यचरणने कोई लक्षणविशेष नहीं बताये हैं. पर श्रीपुरुषोत्तमजीने अपनी आवरणभंग टीकामें बतायो है कि जापे भगवत्कृपा होयगी वाकू या मार्गमें रुचि होयगी तो मार्गानुरूप वेशभूषा वह स्वतः ही अपनावे ये स्वाभाविक है. सो सेवकको रूप भक्तिमार्गीय होवे है. दीक्षादानके पश्चात् श्रीआचार्यचरणने अनेक सेवकनके नाम भी नारायणदास, बादरायणदास आदि भक्तिमार्गीय रखे थे. सो प्राकृतानुकृति छोडकर अपन भक्तिमार्गीय नाम रखें ये उचित है.

(३/१) सेवककू दो क्रिया करवेकी श्रीआचार्यचरण आज्ञा करे हैं. एक तो सेव्यस्वरूपसू संबंधी सदा परिचर्या. परिचर्या माने सरल शब्दनमें जगानेसू लेके पोढाने तककी श्रीठाकुरजीकी सेवा. संस्कृतमें भजन शब्द भज धातुसू बने है. भज सेवायाम् ; भजन=सेवारूपी क्रिया. अब ये सेवा शब्दको एक अर्थ होवे है परिचर्या. सो यहाँ श्रीआचार्यचरण सेव्यस्वरूपको परिचर्यारूप भजन सदा करवेकी सेवककू आज्ञा कर रहे हैं. या क्रियाकी इतनी आवश्यकता है कि कोई विधर्मी देशमें गुरु उपलब्ध न होय तो भी सेवारहित नहीं रहनो यों श्रीआचार्यचरण निज सेवकनकू जता रहे हैं. श्रीमहाप्रभुजीकू गुरु मानकर सेवक स्वयं ही ऐसी परिस्थितिमें श्रीठाकुरजीकी भावप्रतिष्ठा करके सेवापरायण हो जाय तो वाकी छूट आपश्रीने दे रखी है.

(३/२) दूसरी क्रिया सेवककू करनी जो अपेक्षित है वह गुरुसंबंधी

है. भजन=सेवा शब्दको दूसरो अर्थ है सेवन, जैसे औषधिको सेवन. सो गुरुको सेवन करनो है. माने गुरुको खून पीनो नहीं पर गुरुको संग करनो. (आजकल अपन सेवा शब्दकू अपने सम्प्रदायमें द्रव्यसहायसू लेकर व्यभिचार तकके अर्थनमें बेरोकटोक इस्तेमाल करने लग गये हैं! पर परिचर्या एवं संग ही वाके योग्य अर्थ हैं. मेरी समझ ऐसी है कि भगवत्सेवा करवेको जहाँ जहाँ कह्यो है वहाँ भगवत्परिचर्या अर्थ है और गुरुसेवा या वैष्णवसेवा कह्यो है वहाँ वहाँ उनको संग करनेको उपदेश है). अब यह संग कब करनो, क्यों करनो, कैसे करनो यह भी बतायो है. यामें 'सदा' विशेषण नहीं जोड्यो है और गुरुके अभाववाले देशमें तो स्वयं सेवा शुरु कर देनेकी छूट भी दे रखी है, यासू इतनो तो स्पष्ट है कि यह संग करनो भगवत्परिचर्या जितनी अनिवार्य क्रिया तो नहीं है. पर फिर भी याकी कुछ उपादेयता है जरुर. सो सामान्यतया सेवा पधराते समय सेवासंबंधी तथा सेव्यसंबंधी जानकारी प्राप्त करनेके लिये गुरुको संग करनो चहिये. जैसे वार्तानमें आवे है कि श्रीमहाप्रभुजी सेवकनकू दीक्षा देके वाके घर १-५ दिन बिराजके ऐसी सिफतसू वाकू भगवत्परिचर्या सिखा देते थे कि प्रायः सेवकनकू न नित्यनियमसू श्रीमहाप्रभुजीके पास सेवा सीखने आनो पडतो थो न श्रीमहाप्रभुजीकू नित्यनियमसू सिखानो पडतो थो (जैसे आजकल बहाना निकाल्यो जाय है दर्शनकी दुकान चलानेके लिये). कुछ सेवक अडेलमें शरण आते थे तो वहाँ कुछ दिन रहकर सीख जाते थे. तो कोई सेवक स्वयं भी श्रीमहाप्रभुजी जैसे घुमक्कड थे और द्वारिका या जगन्नाथपुरी या मजलपे मिलाप हो गयो तो वहीं शक्य इतनो सीख जाते थे. कँई सेवक तो जन्मभर फिर श्रीमहाप्रभुजीसू मिले भी नहीं थे. गुरुके अभाववाले देशमें स्वयं सेवा शुरु करनेकी छूटवाले कल्पमें भी श्रीपुरुषोत्तमजीने ये खुलासा कियो है कि भविष्यमें गुरु उपलब्ध हो तो तब उनसू उपदेश ग्रहण करनो चहिये. सो प्रारम्भ करते वक्त या यथावसर सूर्यग्रहणादि निमित्तमें भी सेवासंबंधी मार्गदर्शन प्राप्त करने गुरुको संग करनो अपेक्षित है. अब गुरुको संग कैसे करनो याके बारेमें भगवद्गीतामें कह्यो है ''तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया उपदेक्ष्यति ते ज्ञानम्''. तदनुसार गुरुकू प्रणाम करके आदर देनो चहिये, प्रश्न करके अपनी जिज्ञासा प्रकट करनी चहिये और उनको संग करके सेवोपदेश प्राप्त करनो चहिये. श्रीमहाप्रभुजीके शब्दनमें ''भजेद् जिज्ञासुः आदरात् ... तदा तदुक्तप्रकारेण भगवत्सेवा कर्तव्या''. (यह अपनी प्राचीन परंपरा है कि बिना पूछे कछु नहीं बतानो चहिये. ''नापृष्टं कस्यचिद् ब्रूयाद्'' यों मनुस्मृतिमें कह्यो है).

(४) इन क्रियानके अनुरूप सेवककू एक तो सदा अपने माथे बिराजते श्रीठाकुरजीके परिचारक होनेको भाव स्थायी रखनो है और दूसरो गुरुके प्रति आदरको एवं स्वयंमें जिज्ञासु होनेको भाव बनाये रखनो है. याके प्रकाशमें श्रीआचार्यचरण आज्ञा करे हैं कि २४ घंटेकी टी.वी. न्यूझ चॅनलके एन्करकी तरह कौतुकादिके आवेशमें गुरुसू प्रश्न पूछनेको भाव नहीं होनो चहिये पर सचमुचकी शुद्ध जिज्ञासा होनी चहिये.

अब ग) गुरुकू लें.

(१-२) गुरुके रूपके विचारमें श्रीआचार्यचरणने नर होने चहिये यों कह्यो है. नामके बारेमें कुछ कह्यो नहीं है, पर सामान्यतया भक्तिमार्गीय होनो अपेक्षित है. या दोनोंकू आगे सोचेंगे.

(३/१) गुरुकू क्योंकि भगवत्परिचर्योपदेश करनो है सो स्वयं भगवत्परिचर्यापरायण होनो ही चहिये ऐसो श्रीआचार्यचरणको आग्रह है. अन्यथा जा क्रियाकी वो सराहना करे है वाकू वो खुद क्यों नहीं करे है ऐसो लोगनकू प्रश्न होयगो. सो सदा अपने श्रीठाकुरजीकी परिचर्या गुरुकू स्वयं करनी अनिवार्य आवश्यकता है. वाको प्रदर्शन न करके गुप्तरीतिसों करे वामें गुरुकी, उनके श्रीठाकुरजीकी और अपने सम्प्रदायकी शोभा है.

(३/२) शिष्यसंबंधी क्रिया है वाकू आवश्यक होय तब भगवत्परिचर्योपदेश देनेकी. यह उपदेश मनघडंत नहीं होके शास्त्रीयप्रमाणानुसार होय तब ही शिष्यकू भक्तिपथपे आगे बढा पायेगो. अन्यथा शिष्य सेवा करते वक्त मनमें कुछ और ही बात सोचतो होयगो. सो गुरुकू शास्त्रनको ज्ञान होनो चहिये. सब शास्त्र नहीं तो कमसू कम श्रीभागवतके तत्त्वको निःसन्दिग्ध ज्ञान होनो चहिये. तब जाके उपदेश प्रामाणिक दे पायेगो.

(४) इन क्रियानके अनुरूप गुरुकू एक तो सदा अपने माथे बिराजते श्रीठाकुरजीके परिचारक होनेको भाव स्थायी रखनो है और दूसरो शिष्यकू उपदेश देके अपनो कर्तव्यपालन करवेको भाव बनाये रखनो है. याके अलावा श्रीआचार्यचरणने दम्भादि दुर्भाव रखके अन्य निमित्तनसू गुरु बननेको निषेध कियो है सो वैसे कोई दुर्भाव न पनपे वाकी सावधानी गुरुकू लेनी चहिये. श्रीपुरुषोत्तमजीने दम्भादिमें आदि पदसू काम-लोभ-पूजा निमित्त गिनाये हैं.

संक्षेपमें यहाँ श्रीआचार्यचरणने अपने सम्प्रदायको संविधान लिख्यो है. सम्प्रदाय मानों एक देह होय तो ये वाको हाडपिंजर स्कॅलॅटन है. याकी उपेक्षा अपने सम्प्रदायके स्वास्थ्यकी उपेक्षा है.

थोडो विषयान्तर है पर यहाँ अपने सम्प्रदायके इतिहासके एक पन्नेकू मैं अब उजागर कर रह्यो हूँ. यहाँ कारिका तथा प्रकाशमें श्रीआचार्यचरणने गुरुके अभाववाले देशमें स्वयं भगवत्परिचर्यामें उद्यत होनेकी छूट दी है. सो कँई गोस्वामी बालकनकू यामें काल्पनिक डर लगतो रह्यो है कि कहीं याकू पढके सब चेले बिना गुरुके सेवा करने लग गये तो हमारो निर्वाह कैसे होयगो! सो सन् १९८७में आपसी चर्चामें निबन्धके या हिस्साकू अदालत या वैष्णवनके सामने उजागर न करनेको लिखित मन्तव्य प्रकट कियो गयो. तो कुछेक महासाहसिक गोस्वामी बालक तो मौखिक बंद कमरेकी चर्चामें ऐसो मन्तव्य भी प्रकट कर रहे थे कि निबन्धके या हिस्सामें अपने सम्प्रदायकी बात ही नहीं है पर श्रीआचार्यचरण यहाँ विष्णुस्वामीके सम्प्रदायसदृश कोई मर्यादामार्गको संविधान बता रहे हैं, जो अपने सम्प्रदायपे लागु नहीं हो रह्यो है! ३१ वर्षके भये तब ब्रह्मसंबंधकी आज्ञा मिली करके बादमें पुष्टिसम्प्रदाय शुरु कियो, जामें निबन्धमें दिये उपदेशसू अलग बात बताई! (वंशज अपनेमें पूर्वजके गुण होनेको दावा करे सो तो क्षम्य है, पर पूर्वजमें अपने डामाडोल मनस्थिति जैसे अवगुण होनेको दावा करे ये तो सरासर अनधिकारचेष्टा है). आगे जाके सन् १९९२में पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत सिद्धान्तवचनावलीमें यह वचन सामिल कियो गयो तब यही 'सिद्धांतघोषणा लटकाओ-अटकाओ-भटकाओ गेन्ग'ने प्रतिवादीकू सन्मानपत्र देके सम्प्रदायकू गुमराह करनेके भरसक प्रयास किये, जो निष्फल रहे. सो आज इतने सालनसू वैष्णवनके सामने यह वचन प्रकट होनेपर भी याको कोई दुष्परिणाम दिख नहीं रह्यो होवेसू काल्पनिक डर छोडनेको यह उचित अवसर है.

रही बात निबन्धके ये वचन अपने सम्प्रदायसंबंधी हैं या नहीं याके निर्णयकी. तो या श्रीमहाप्रभुजीकृत कारिका+प्रकाशपे श्रीगोपीनाथजीकी पद्यात्मिका साधनदीपिका और श्रीपुरुषोत्तमजीकी गद्यात्मिका आवरणभंग टीकानके अलावा श्रीहरिरायजीकी पद्यात्मिका टीका है, जाको नाम है : स्वमार्गीय-शरण-समर्पण-सेवादिनिरूपणम्! सो यों तो नाममात्रसू खुलासा हो गयो. पर बात छेडी है तो विचार लें. थोडो सिद्धान्तरहस्य ग्रन्थ प्रकट भयो वा प्रसंगको वर्णन देख लें. "ता समें श्रीठाकुरजी तत्काल प्रगट होइके श्रीआचार्यजीसों पूछी जो तुम चिन्तातुर क्यों हो? तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप कहें जो जीवको स्वरूप तो तुम जानत ही हो, दोषवन्त हैं. जो तुमसों जीवनको संबंध कैसे होय? तब श्रीठाकुरजी कहे जो तुम जीवको नाम देउगे तिनके सकल दोष निवृत्त होइंगे, तातें तुम जीवनको अंगीकार करो. ... तब श्रीआचार्यजी

आप कहे जो मोकों श्रीठाकुरजीने आज्ञा कीनी है जो तुम जीवनको ब्रह्मसंबंध करवाओ तिनकों हों अंगीकारु करुंगो. ... तातें ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो.'' सो प्रभु उद्धारक हैं और जीवकू उनकी परिचर्या करनी है यह स्पष्ट है. गुरु स्वयं उद्धारक नहीं है पर इन दोनोंनको संबंध करा दे रह्यो है. यही बात तो निबन्धमें आई.

थोडो वार्ता और सर्वोत्तमस्तोत्रमें देख लें. श्रीमहाप्रभुजी ''दैवोद्धारप्रयत्नात्मा'' और ''स्त्रीशूद्राद्युद्धृतिक्षमः'' हैं, पर कैसे? ''अंगीकृत्यैव गोपीशवल्लभीकृतमानवः'', ''अंगीकृतौ समर्यादः'' और ''सान्निध्यमात्रदत्त-श्रीकृष्णप्रेमा''! माने उद्धारक तो प्रभु हैं, श्रीमहाप्रभुजी नहीं. पर श्रीआचार्यजीके प्रयत्न और क्षमता ऐसे हैं कि उनको संग करके सेवकनमें श्रीकृष्णप्रेम प्रकट हो जा रह्यो है और श्रीठाकुरजीकू वैसो सेवक प्यारो लगने लगे है. याकी पराकाष्ठा पद्मनाभदासकी वार्तामें है, कि उनने श्रीठाकुरजीकू कही कि आपकू श्रीआचार्यजीके यहाँ पधारनो होय तो वहाँ नाना प्रकारकी सामग्री हैं और मेरे यहाँ तो जा समय जैसो बनि आवेगो तैसो भोग धरुंगो. तब श्रीठाकुरजीने कही कि मोकू तेरो कियो भावत है, सो जो भोग धरेगो सो रुचिसों आरोगुंगो. याकी पराकाष्ठा गज्जनधावनकी वार्तामें है, कि उनके ठाकुरजी श्रीनवनीतप्रियजीने श्रीआचार्यजीसों कही कि मेरो गज्जन आवेगो तब मैं आपको धर्यो राजभोग आरोगुंगो. ये श्रीआचार्यजीकी ऐसी पराजय है जापे दस विजय न्योछावर है. ये निबन्धके वचनसू मेल खा रहे हैं या नहीं?

खैर. हेमेन शाहको गुजरातीमें एक शेर है—

रजु करवी ज पडशे वात दीवा जेवी आजे तो,
''हवा सामी दिशानी छे!'' हवे ए डर नहीं चाले.

सो डरे बिना अब मैं जो बता रह्यो हूँ वो मेरी अपनी समझ है, कोई वचनको अर्थ नहीं. निबन्धको अवगाहन करके अब वाके आधारपे दोनों संबंधकी तुलना करके देखें, जासू निष्कर्षकी ओर आगे बढ सकें.

	अ) सेव्य-सेवकको संबंध	ब) गुरु-शिष्यको संबंध
१. स्वरूप	उद्धारक-परिचारक	उपदेशक-जिज्ञासु
२. क्रिया	सदा परिचर्या	प्रारम्भे / यथावसर संग
३. भावना	परिवारभावना (फेमिलीस्पिरिट)	संघभावना (टीमस्पिरिट)

यामें अ/१ और /२ तो मैं उपर समझा चूक्यो. पर अ/३ नई बात है. आज कँई अपने सम्प्रदायके लोगनकू भी यह प्रश्न होवे है कि भगवत्सेवा घरमें करनेको आग्रह क्यों है? क्यों न सेठियानके

धनसू महाराजश्री टीमके कप्तानकी तरह आलीशान हवेली बनाके चलावे, जासू उनकू आजीविका मिले, टीममेंके मुखिया-भीतरियानकू रोजगार मिले, दर्शनार्थी जनताकू दर्शन-प्रसाद मिले, सेठियानकू प्रसिद्धि मिले और सम्प्रदायको यश फैले. (ठाकुरजीकी तो वैसे भी कौनकू फिकर है!). ''क्योंकि जगहजगह अन्य सम्प्रदायवाले अक्षरधाम या इस्कोनके मंदिर ऐसे ही चले हैं''! तो सिद्धान्तमुक्तावलीमें श्रीआचार्यचरणने ''तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा'' आज्ञा करी है वाकी टीकामें श्रीगुसांईजीने या टीमस्पिरिटको निषेध कियो है— ''वित्तं दत्वा अन्येन पुरुषेण कृत्वा कारिता एका, एतादृशेन पुंसा कृता च अपरा, एतादृश्यौ ते तत्साधिके न.'' ये पिता-पुत्र प्रायः अडेल और व्रजमें बिराजे. वाके करीब दोसौ साल बाद सुरतनिवासी श्रीपुरुषोत्तमजी याकी टीकामें समझावे हैं कि ऐसी टीमस्पिरिट कर्मकाण्डमें शास्त्रविहित है, कि पुरोहित कर्म करे पर वाको फल यजमानकू मिले और पुरोहितकू यजमान दक्षिणा दे दे. भक्तिप्रतिपादक शास्त्रमें किन्तु ऐसे काम बाँटके टीमस्पिरिटसू भक्ति करनेको विधान नहीं है. या लिये सेवा तो एककर्तृका होवे तब ही कामकी. याके करीब दोसौ साल बादके सौराष्ट्रके अमरेलीके निवासी श्रीवागधीशलालजी महाराजके अदालतमें पेश सौगन्धनामामें यह बतायो है कि उनके श्रीठाकुरजीकी सेवामें जो खर्च होवे है वो वे अपनी आमदनीसू घरखर्चतया काढे हैं. तो स्पष्ट है कि व्यापक देश-कालमें भी अपने सम्प्रदायमें या बारेमें कोई दो राय नहीं थी कि भगवत्सेवा टीमस्पिरिटसू नहीं करनी होवे है. तो कैसे करनी? ''एतेन भगवदर्थं निरुपधिस्वसर्वस्वनिवेदनपूर्वकं तत्रैव स्वदेहविनियोगे प्रेम्णि जाते सा भवति'' श्रीगुसाँईजी वहीं आज्ञा करे है. सेवाके पहले आत्मनिवेदन कियो वामें अपनो देहादि-घर-परिवार ऐहिक पारलौकिक सब कछु श्रीठाकुरजीकू निवेदित कर दियो है. सो अब अपने माथे बिराजते श्रीठाकुरजीकू अपने पारिवारिक सदस्य मानके ''एनम् समर्पयिष्यामि'' संकल्प करके देहादि सबनको प्रेमपूर्वक निरुपधि सेवामें विनियोग करनो चहिये. माने फेमिलीस्पिरिटसू श्रीठाकुरजी और अन्य परिवारजनसू आपसमें निभानो चहिये. अब परिवारमें भी कोई काम मिलके कर सके हैं, पर तब भी फेमिलीस्पिरिट ही कायम रहे है.

अब ब) गुरु-शिष्यके संबंधपे आवे. या संबंधकी एक मर्यादा श्रीआचार्यचरणने निबन्धमें बता दी. बोलचालकी भाषामें याकू अपन लक्ष्मणरेखा कह सके, पर कोई याको ये अर्थ निकाले कि मैं गुरुनकू रावण और सेवकनकू सीता कहनो चाह रह्यो हूँ तो वो मेरो आशय नहीं है. या लिये लक्ष्मणसुत श्रीवल्लभरायजीकी वल्लभरेखा मैं याकू कहूंगो. सो यह वल्लभरेखाकू आज अपन दोनोंनने लांघ

दी है. सीमित मात्रामें यथावसर संग करवेके विधानकू पढे बिना आज कुछ ज्यादा ही घनिष्ठ घरेलु जैसे संबंध अपन दोनोंनने बना रखे हैं. या संबंधमें फेमिलीस्पिरिट नहीं पर टीमस्पिरिट आवश्यक है, जैसी शुकदेवजी और परीक्षित राजामें थी. शिष्यकू जिज्ञासा प्रकट करनी है और उपदेश ग्रहण करनो है बस. आज तो शिष्य गुरुनके शोख-मौजकी चीजनके सप्लायर, अनसर्टिफाईड फाईनान्शियल एडवाईझर, टेक्स कन्सल्टन्ट, मेनेजमेन्ट कन्सल्टन्ट, ट्रावेल प्लानर, करन्सी एक्सचेन्ज ब्रोकर और न जाने क्या क्या हो गये हैं! गुरु इन बातनकी जिज्ञासा करते और उपदेश ग्रहण करते हो गये लगे हैं! पर पूर्वाचार्यनको चरित्र देखें तो गज्जनधावन या कृष्णोदासी जैसे अपवादकू छोडकर सर्वत्र उनने सेवकनके साथ टीमस्पिरिट निभाई है, फेमिलीस्पिरिट नहीं. तब जाके तो षोडशग्रंथादि प्रकट भये.

खैर. अब एक बडी बात समझा रह्यो हूँ. निबन्धपे आधारित जो टेबल मैंने आगे समझायो (पृष्ठ ८) वामें थोडी देरके लिये सेवककी कोलम भूलकर सेव्य और गुरुकी कोलमकी तुलना करो. अपने यहाँ एक गलतफहमी व्यापक है कि गुरु पुरुषोत्तम है या होने चहिये, जबकि श्रीठाकुरजीमें कोई लोग गुरुभाव रखनेको आग्रह करे है! तो श्रीमहाप्रभुजी निबन्धमें ''मूर्तः भगवत्त्वं त्रेधा निरूपयति'' आज्ञा करके आगे श्रीठाकुरजी पुरुषोत्तम हैं ये सिद्ध कर रहे हैं कि नहीं? और जाकू नर कह रहे हैं और जासू सेवापरायण, शास्त्रज्ञ तथा दम्भादिरहित होनेकी अपेक्षा रख रहे हैं वह गुरु क्या पुरुषोत्तम होनो आवश्यक है? नहीं. गुरुकू साकारव्यापक, मन्त्रनसू संबोधित और उद्धारक बताये या सेव्य श्रीठाकुरजीकू? गुरु भक्त होने चहिये —ये श्रीमहाप्रभुजी बता रहे हैं. श्रीहरिरायजी याकी टीकामें कहे हैं ''गुरुश्च भक्तिमार्गीयः कृष्णसेवापरायणः, श्रीभागवततत्त्वज्ञः दम्भादिरहितो नरः''. तो जो भक्तिमार्गीय सेवापरायण नर होयगो वो तो भक्त होयगो, पुरुषोत्तम नहीं.

ये स्पष्ट समझे तो अब ''तत्कथाक्षिप्तचित्तः'' श्रीमहाप्रभुजीके भक्तस्वभावकी सर्वोत्तमश्रीकू याद करो. ऐसे भक्त श्रीमहाप्रभुजीको संग फलात्मक है करके ये नाम फलपरक है. वार्तानमें कँई सेवक जैसे श्रीमहाप्रभुजीके पुरुषोत्तमरूपसू दर्शन पाके शरण आये वैसे कँई अन्य ऐसे भी हैं जो श्रीमुखकी कथा सुनकर शरण आये. वह आपश्रीके भक्त होनेको प्रभाव है. (अब यही बात भावप्रकाशकार श्रीहरिरायजीने यों कही कि श्रीआचार्यजीको लीलामें स्वरूप श्रीस्वामिनीजीको है और कृष्णदास मेघन, दिनकर सेठ क्षत्री, दामोदरदास हरसानी, प्रभुदास जलोटा आदि लीलामें उनकी सखी हैं तो सबनकू कोई आपत्ति

नहीं है!)

तो आवश्यकता यह है कि गुरु भक्त होने चहिये ; पुरुषोत्तम चाहे होय या न होय. गुरु पुरुषोत्तम भी होय तो कोई आपत्ति नहीं है. पर गुरु पुरुषोत्तम नहीं भी होय तो कछु नुकसान नहीं है, क्योंकि सेव्य श्रीठाकुरजी, जो उद्धारक हैं, वे पुरुषोत्तम स्वतः हैं ही. पर गुरु भक्त नहीं होय तो कितनो बडो नुकसान है या हकीकतको तो आज अपनो सम्प्रदाय लगातार अनुभव रह्यो है.

सो अन्तमें मैं ऐसी शुभकामना करुं हूँ कि अपन गुरु-शिष्य दोनों वर्ग मार्गकी अवदशाको ठीकरा एक-दूसरेके सरपे फोडनो छोडके वल्लभरेखाको उल्लंघन करनेकी आदत छोडें, सोशियल डिस्टन्सिंग निभायें. अब कोई कोरोनावायरस जैसो वायरस लग जातो होवे तो तो नित्यनियमसू सार्वजनिक मन्दिरमें जाकर दर्शन करनेकी आदत लोकडाऊनके मारे छूट गई वैसे तुरत ये आदत छूट पाती. पर वैसो नहीं है, यासू समझदारीसू छोडनो आज कुछ लोग शुरु करेंगें तो १५-२० सालमें जाके पार आयेगो. पर वह टीकेगो.

होवे है क्या कि गोस्वामी बालक ८-१० सालके होय तबसू ''जेजे आप तो पुरुषोत्तम हो'' कहकर उनको ब्रेईनवॉश कर दे हैं अन्तरंग सेवक. फिर बडे होकर आदतके शिकार वे स्वयं सबनसू ये मनवानेको आग्रह करते हो जाय हैं. सो यह चक्र रुके नहीं है. पर क्या पुरुषोत्तम अपने घरकू टेक्स बचानेके लिये ट्रस्ट करा दे? अमेरिका पधारनो होय तो वीसा मिले याके लिये स्पोन्सरशीप लेटर लाके कोन्स्युलेटमें इन्टरव्यू दे? डाईवॉर्स ले / दे?

श्रीआचार्यचरणकी वाणीको अवगाहन तुरत ही या ताशके पत्तेके महलकू छिन्नभिन्न कर सके है. गुरुकू यों कहनो चहिये ''जेजे आप पुरुषार्थ करके भक्तस्वभाव स्वयं प्राप्त करके हम सेवकनकू भी आपके समर्याद संगसू भक्त बना दो तो ही आपको और हमारो प्राकट्य सफल है''.

॥ बुद्धिप्रेरककृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु ॥